परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।
शत बार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमातमा ।।१ ।।
परमपदथित शुध अपरिमित ज्ञान-दर्शनमय प्रभु ।
को नमन कर हे योगिजन ! परमात्म का वर्णन करुँ ।।२।।
योगस्थ योगीजन अनवरत अरे ! जिसको जान कर ।
अनंत अव्याबाध अनुपम मोक्ष की प्राप्ति करें ।।३।।
त्रिविध आतमराम में बहिरातमापन त्यागकर ।
अन्तरात्म के आधार से परमात्मा का ध्यान धर ।।४।।
ये इन्द्रियाँ बहिरातमा अनुभूति अन्तर आतमा ।
जो कर्ममल से रहित हैं वे देव हैं परमातमा ।।५।।
है परमजिन परमेष्ठी है शिवंकर जिन शास्वता ।
केवल अनिन्द्रिय सिद्ध है कल-मलरहित शुद्धातमा ।।६।।
जिनदेव का उपदेश यह बहिरातमापन त्यागकर ।
अरे ! अन्तर आतमा परमात्मा का ध्यान धर ।।७।।
निजरूप से च्युत बाह्य में स्फुरितबुद्धि जीव यह ।
देहादि में अपनत्व कर बहिरात्मपन धारण करे ।।८।।

निज देहसम परदेह को भी जीव जानें मूढ़जन ।
उन्हें चेतन जान सेवें यद्यपि वे अचेतन ।।९।।
निजदेह को निज-आतमा परदेह को पर-आतमा ।
ही जानकर ये मूढ़ सुत-दारादि में मोहित रहें ।।१०।।
कुज्ञान में रत और मिथ्याभाव से भावित श्रमण ।
मद-मोह से आच्छन्न भव-भव देह को ही चाहते ।।११।।
जो देह से निरपेक्ष निर्मम निरारंभी योगिजन ।
निर्द्वन्द रत निजभाव में वे ही श्रमण मुक्ति वरें ।।१२।।
परद्रव्य में रत बंधें और विरक्त शिवरमणी वरें ।
जिनदेव का उपदेश बंध-अबंध का संक्षेप में ।।१३।।
नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं ।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ।।१४।।
किन्तु जो परद्रव्य रत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधें ।।१५।।
परद्रव्य से हो दुर्गति निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ।।१६।।
जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।
उन सर्वद्रव्यों को अरे ! परद्रव्य जिनवर ने कहा ।।१७।।
दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ।।१८।।
परद्रव्य से हो पराङ्गमुख निजद्रव्य को जो ध्यावते ।
जिनमार्ग में संलग्न वे निर्वाणपद को प्राप्त हों ।।१९।।
शुद्धात्मा को ध्यावते जो योगि जिनवरमत विषैं ।
निर्वाणपद को प्राप्त हों तब क्यों न पावें स्वर्ग वे ।।२०।।
गुरु भार लेकर एक दिन में जाँय जो योजन शतक ।
जावे न क्यों क्रोशार्द्ध में इस भुवनतल में लोक में ।।२१।।

जो अकेला जीत ले जब कोटि भट संग्राम में ।
तब एक जन को क्यों न जीते वह सुभट संग्राम में ।।२२।।
शुभभाव-तप से स्वर्ग-सुख सब प्राप्त करते लोक में ।
पाया सो पाया सहजसुख निजध्यान से परलोक में ।।२३।।
ज्यों शोधने से शुद्ध होता स्वर्ण बस इसतरह ही ।
हो आतमा परमातमा कालादि लब्धि प्राप्त कर ।।२४।।
ज्यों धूप से छाया में रहना श्रेष्ठ है बस उसतरह ।
अव्रतों से नरक व्रत से स्वर्ग पाना श्रेष्ठ है ।।२५।।
जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते ।
वे कर्म ईंधन-दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते ।।२६।।
अरे मुनिजन मान-मद आदिक कषायें छोड़कर ।
लोक के व्यवहार से हों विरत ध्याते आतमा ।।२७।।
मिथ्यात्व एवं पाप-पुन अज्ञान तज मन-वचन से ।
अर मौन रह योगस्थ योगी आतमा को ध्यावते ।।२८।।
दिखाई दे जो मुझे वह रूप कुछ जाने नहीं ।
मैं करूँ किससे बात मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ ।।२९।।
सर्वास्रवों के रोध से संचित करम खप जाय सब ।
जिनदेव के इस कथन को योगस्थ योगी जानते ।।३०।।
जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ।।३१।।
इमि जान जोगी छोड़ सब व्यवहार सर्वप्रकार से ।
जिनवर कथित परमातमा का ध्यान धरते सदा ही ।।३२।।
पंच समिति महाव्रत अर तीन गुप्ति धर यती ।
रतनत्रय से युक्त होकर ध्यान अर अध्ययन करो ।।३३।।
आराधना करते हुये को अराधक कहते सभी ।
आराधना का फल सुनो बस एक केवलज्ञान है ।।३४।।

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।
यह कहा जिनवरदेव ने तुम स्वयं केवलज्ञानमय ।।३५।।
रतन त्रय जिनवर कथित आराधना जो यति करें ।
वे धरें आतम ध्यान ही संदेह इसमें रंच ना ।।३६।।
जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा ।
पुण्य-पाप का परिहार चारित यही जिनवर ने कहा ।।३७।।
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है ।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ।।३८।।
दृग-शुद्ध हैं वे शुद्ध उनको नियम से निर्वाण हो।
दृग-भ्रष्ट हैं जो पुरुष उनको नहीं इच्छित लाभ हो ।।३९।।
उपदेश का यह सार जन्म-जरा-मरण का हरणकर ।
समदृष्टि जो मानें इसे वे श्रमण श्रावक कहे हैं ।।४०।।
यह सर्वदर्शी का कथन कि जीव और अजीव की ।
भिन-भिन्नता को जानना ही एक सम्यग्ज्ञान है ।।४१।।
इमि जान करना त्याग सब ही पुण्य एवं पाप का ।
चारित्र है यह निर्विकल्पक कथन यह जिनदेव का ।।४२।।
रतनत्रय से युक्त हो जो तप करे संयम धरे ।
वह ध्यान धर निज आतमा का परमपद को प्राप्त हो ।।४३।।
रुष-राग का परिहार कर त्रययोग से त्रयकाल में ।
त्रयशल्य विरहित रतनत्रय धर योगि ध्यावे आतमा ।।४४।।
जो जीव माया-मान-लालच-क्रोध को तज शुद्ध हो ।
निर्मल-स्वभाव धरे वही नर परमसुख को प्राप्त हो ।।४५।।
जो रुद्र विषय-कषाय युत जिन भावना से रहित हैं।
जिनलिंग से हैं पराङ्गमुख वे सिद्धसुख पावें नहीं ।।४६।।
जिनवरकथित जिनलिंग ही है सिद्धसुख यदि स्वप्न में।
भी ना रुचे तो जान लो भव गहन वन में वे रुलें ।।४७।।

परमातमा के ध्यान से हो नाश लोभ कषाय का ।
नवकर्म का आस्रव रुके यह कथन जिनवरदेव का ।।४८।।
जो योगि सम्यक्दर्शपूर्वक चारित्र दृढ़ धारण करे ।
निज आतमा का ध्यानधर वह मुक्ति की प्राप्ति करे ।।४९।।
चारित्र ही निजधर्म है अर धर्म आत्मस्वभाव है ।
अनन्य निज परिणाम वह ही राग-द्वेष विहीन है ।।५०।।
फटिकमणिसम जीव शुध पर अन्य के संयोग से ।
वह अन्य-अन्य प्रतीत हो पर मूलत: तो अनन्य ही ।।५१।।
देव-गुरु का भक्त अर अनुरक्त साधक वर्ग में ।
सम्यक्सहित निज ध्यानरत ही योगि हो इस जगत में ।।५२।।
उग्र तप तप अज्ञ भव-भव में न जितने क्षय करें ।
विज्ञ अन्तर्मुहूरत में कर्म उतने क्षय करें ।।५३।।
परद्रव्य में जो साधु करते राग शुभ के योग से ।
वे अज्ञ हैं पर विज्ञ राग नहीं करें परद्रव्य में ।।५४।।
निज भाव से विपरीत अर जो आस्रवों के हेतु हैं ।
जो उन्हें मानें मुक्तिमग वे साधु सचमुच अज्ञ हैं ।।५५।।
अरे जो कर्मजमति वे करें आत्मस्वभाव को ।
खण्डित अत: वे अज्ञजन जिनधर्म के दूषक कहे ।।५६।।
चारित रहित है ज्ञान-दर्शन हीन तप संयुक्त है ।
क्रिया भाव विहीन तो मुनिवेष से क्या साध्य है ।।५७।।
जो आतमा को अचेतन हैं मानते अज्ञानि वे ।
पर ज्ञानिजन तो आतमा को एक चेतन मानते ।।५८।।
निरर्थक तप ज्ञान विरहित तप रहित जो ज्ञान है ।
यदि ज्ञान तप हों साथ तो निर्वाणपद की प्राप्ति हो ।।५९।।
क्योंकि चारों ज्ञान से भी महामण्डित तीर्थकर ।
भी तप करें बस इसलिए तप करो सम्यग्ज्ञान युत ।।६०।।

स्वानुभव से भ्रष्ट एवं शून्य अन्तरलिंग से ।
बहिर्लिंग जो धारण करें वे मोक्षमग नाशक कहे ।।६१।।
अनुकूलता में जो सहज प्रतिकूलता में नष्ट हों ।
इसलिये प्रतिकूलता में करो आतम साधना ।।६२।।
आहार निद्रा और आसन जीत ध्याओ आतमा ।
बस यही है जिनदेव का मत यही गुरु की आज्ञा ।।६३।।
ज्ञान दर्शन चरित मय जो आतमा जिनवर कहा ।
गुरु की कृपा से जानकर नित ध्यान उसका ही करो ।।६४।।
आतमा का जानना भाना व करना अनुभवन ।
तथा विषयों से विरक्ति उत्तरोत्तर है कठिन ।।६५।।
जबतक विषय में प्रवृत्ति तबतक न आतमज्ञान हो ।
इसलिए आतम जानते योगी विषय विरक्त हो ।।६६।।
निज आतमा को जानकर भी मूढ़ रमते विषय में ।
हो स्वानुभव से भ्रष्ट भ्रमते चतुर्गति संसार में ।।६७।।
अरे विषय विरक्त हो निज आतमा को जानकर ।
जो तपोगुण से युक्त हों वे चतुर्गति से मुक्त हों ।।६८।।
यदि मोह से पर द्रव्य में रति रहे अणु परिमाण में ।
विपरीतता के हेतु से वे मूढ़ अज्ञानी रहें ।।६९।।
शुद्ध दर्शन दृढ़ चरित एवं विषय विरक्त नर ।
निर्वाण को पाते सहज निज आतमा का ध्यान धर ।।७०।।
पर द्रव्य में जो राग वह संसार कारण जानना ।
इसलिये योगी करें नित निज आतमा की भावना ।।७१।।
निन्दा-प्रशंसा दुक्ख-सुख अर शत्रु-बंधु-मित्र में ।
अनुकूल अर प्रतिकूल में समभाव ही चारित्र है ।।७२।।
जिनके नहीं व्रत-समिति चर्या भ्रष्ट हैं शुधभाव से ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान-योग नहीं बने ।।७३।।

जो शिवविमुख नर भोग में रत ज्ञानदर्शन रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान-योग नहीं बने ।।७४।।
जो मूढ़ अज्ञानी तथा व्रत समिति गुप्ति रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान-योग नहीं बने ।।७५।।
भरत-पंचमकाल में निजभाव में थित संत के ।
नित धर्मध्यान रहे न माने जीव जो अज्ञानि वे ।।७६।।
रतनत्रय से शुद्ध आतम आतमा का ध्यान धर ।
आज भी हों इन्द्र आदिक प्राप्त करते मुक्ति फिर ।।७७।।
जिन लिंग धर कर पाप करते पाप मोहितमति जो ।
वे च्युत हुए हैं मुक्तिमग से दुर्गति दुर्मति हो ।।७८।।
हैं परिग्रही अध:कर्मरत आसक्त जो वस्त्रादि में ।
अर याचना जो करें वे सब मुक्तिमग से बाह्य हैं ।।७९।।
रे मुक्त हैं जो जितकषायी पाप के आरंभ से ।
परिषहजयी निर्ग्रंथ वे ही मुक्तिमारग में कहे ।।८०।।
त्रैलोक में मेरा न कोई मैं अकेला आतमा ।
इस भावना से योगिजन पाते सदा सुख शास्वता ।।८१।।
जो ध्यानरत सुचरित्र एवं देव-गुरु के भक्त हैं ।
संसार-देह विरक्त वे मुनि मुक्तिमारग में कहे ।।८२।।
निजद्रव्यरत यह आतमा ही योगि चारित्रवंत है ।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन यह ।।८३।।
ज्ञानदर्शनमय अवस्थित पुरुष के आकार में ।
ध्याते सदा जो योगि वे ही पापहर निर्द्वन्द हैं ।।८४।।
जिनवरकथित उपदेश यह तो कहा श्रमणों के लिए।
अब सुनो सुखसिद्धिकर उपदेश श्रावक के लिए ।।८५।।
सबसे प्रथम सम्यक्त्व निर्मल सर्व दोषों से रहित ।
कर्मक्षय के लिये श्रावक-श्राविका धारण करें ।।८६।।

अरे सम्यग्दृष्टि है सम्यक्त्व का ध्याता गृही ।
दुष्टाष्ट कर्मों को दहे सम्यक्त्व परिणत जीव ही ।।८७।।
मुक्ति गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का ।
यह जान लो हे भव्यजन ! इससे अधिक अब कहें क्या ।।८८।।
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही ।
दु:स्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ।।८९।।
सब दोष विरहित देव अर हिंसारहित जिनधर्म में ।
निर्ग्रन्थ गुरु के वचन में श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ।।९०।।
यथाजातस्वरूप संयत सर्व संग विमुक्त जो ।
पर की अपेक्षा रहित लिंग जो मानते समदृष्टि वे ।।९१।।
जो लाज-भय से नमें कुत्सित लिंग कुत्सित देव को ।
और सेवें धर्म कुत्सित जीव मिथ्यादृष्टि वे ।।९२।।
अरे रागी देवता अर स्वपरपेक्षा लिंगधर ।
व असंयत की वंदना न करें सम्यग्दृष्टिजन ।।९३।।
जिनदेव देशित धर्म की श्रद्धा करें सद्दृष्टिजन ।
विपरीतता धारण करें बस सभी मिथ्यादृष्टिजन ।।९४।।
अरे मिथ्यादृष्टिजन इस सुखरहित संसार में ।
प्रचुर जन्म-जरा-मरण के दुख हजारों भोगते ।।९५।।
जानकर सम्यक्त्व के गुण दोष मिथ्याभाव के ।
जो रुचे वह ही करो अधिक प्रलाप से है लाभ क्या ।।९६।।
छोड़ा परिग्रह बाह्य मिथ्याभाव को नहिं छोड़ते ।
वे मौन ध्यान धरें परन्तु आतमा नहीं जानते ।।९७।।
मूलगुण उच्छेद बाह्य क्रिया करें जो साधुजन ।
हैं विराधक जिनलिंग के वे मुक्ति-सुख पाते नहीं ।।९८।।
आत्मज्ञान बिना विविध-विध विविध क्रिया-कलाप सब ।
और जप-तप पद्म-आसन क्या करेंगे आत्महित ।।९९।।

यदि पढ़े बहुश्रुत और विविध क्रिया-कलाप करे बहुत ।
पर आतमा के भान बिन बालाचरण अर बालश्रुत ।।१००।।
निजसुख निरत भवसुख विरत परद्रव्य से जो पराङ्मुख ।
वैराग्य तत्पर गुणविभूषित ध्यान धर अध्ययन सुरत ।।१०१।।
आदेय क्या है हेय क्या - यह जानते जो साधुगण ।
वे प्राप्त करते थान उत्तम जो अनन्तानन्दमय ।।१०२।।
जिनको नमे थुति करे जिनकी ध्यान जिनका जग करे ।
वे नमें ध्यावें थुति करें तू उसे ही पहिचान ले ।।१०३।।
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण ।
सब आतमा की अवस्थायें आतमा ही है शरण ।।१०४।।
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।
सब आतमा की अवस्थायें आतमा ही है शरण ।।१०५।।
जिनवरकथित यह मोक्षपाहुड जो पुरुष अति प्रीति से ।
अध्ययन करें भावें सुनें वे परमसुख को प्राप्त हों ।।१०६।।

-•-

लिंगपाहुड़

कर नमन श्री अरिहंत को सब सिद्ध को करके नमन ।
संक्षेप में मैं कह रहा हूँ लिंगपाहुड शास्त्र यह ।।१।।
धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो ।
समभाव को पहिचानिये द्रवलिंग से क्या कार्य हो ।।२।।
परिहास में मोहितमती धारण करें जिनलिंग जो ।
वे अज्ञजन बदनाम करते नित्य जिनवर लिंग को ।।३।।
जो नाचते गाते बजाते वाद्य जिनवर लिंगधर ।
हैं पाप मोहितमती रे वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।४।।
जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से ।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।५।।

अर कलह करते जुआ खेलें मानमंडित नित्य जो ।
वे प्राप्त होते नरकगति को सदा ही जिन लिंगधर ।।६।।
जो पाप उपहत आतमा अब्रह्म सेवें लिंगधर ।
वे पाप मोहितमती जन संसारवन में नित भ्रमें ।।७।।
जिनलिंगधर भी ज्ञान-दर्शन-चरण धारण ना करें ।
वे आर्तध्यानी द्रव्यलिंगी नंत संसारी कहे ।।८।।
रे जो करावें शादियाँ कृषि वणज कर हिंसा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ।।९।।
जो चोर लाबर लड़ावें अर यंत्र से क्रीडा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ।।१०।।
ज्ञान-दर्शन-चरण तप संयम नियम पालन करें ।
पर दुःखी अनुभव करें तो जावें नियम से नरक में ।।११।।
कन्दर्प आदि में रहें अति गृद्धता धारण करें ।
हैं छली व्याभिचारी अरे ! वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।१२।।
जो कलह करते दौड़ते हैं इष्ट भोजन के लिये ।
अर परस्पर ईर्षा करें वे श्रमण जिनमार्गी नहीं ।।१३।।
बिना दीये ग्रहें परनिन्दा करें जो परोक्ष में ।
वे धरें यद्यपि लिंगजिन फिर भी अरे वे चोर हैं ।।१४।।
ईर्या समिति की जगह पृथ्वी खोदते दौड़ें गिरें ।
रे पशूवत उठकर चलें वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।१५।।
जो बंधभय से रहित पृथ्वी खोदते तरु छेदते ।
अर हरित भूमी रोंधते वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ।।१६।।
राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें ।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच है ।।१७।।
श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो ।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ।।१८।।

इस तरह वे भ्रष्ट रहते संयतों के संघ में ।
रे जानते बहुशास्त्र फिर भी भाव से तो नष्ट हैं ।।१९।।
पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिलावर्ग में ।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग हैं ।।२०।।
जो पुंश्चली के हाथ से आहार लें शंशा करें ।
निज पिंड पोसें वालमुनि वे भाव से तो नष्ट हैं ।।२१।।
सर्वज्ञभाषित धर्ममय यह लिंगपाहुड जानकर ।
अप्रमत्त हो जो पालते वे परमपद को प्राप्त हों ।।२२।।

-•-

शीलपाहुड़

विशाल जिनके नयन अर रक्तोत्पल जिनके चरण ।
त्रिविध नम उन वीर को मैं शील गुण वर्णन करूँ ।।१।।
शील एवं ज्ञान में कुछ भी विरोध नहीं कहा ।
शील बिन तो विषयविष से ज्ञानधन का नाश हो ।।२।।
बड़ा दुष्कर जानना अर जानने की भावना ।
एवं विरक्ति विषय से भी बड़ी दुष्कर जानना ।।३।।
विषय बल हो जबतलक तबतलक आतमज्ञान ना ।
केवल विषय की विरक्ति से कर्म का हो नाश ना ।।४।।
दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो ।
संयम रहित तप निरर्थक आकास-कुसुम समान हो ।।५।।
दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो ।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ।।६।।
ज्ञान हो पर विषय में हों लीन जो नर जगत में ।
रे विषयरत वे मूढ़ डोलें चार गति में निरन्तर ।।७।।
जानने की भावना से जान निज को विरत हों ।
रे वे तपस्वी चार गति को छेदते संदेह ना ।।८।।

जिसतरह कंचन शुद्ध हो खड़िया-नमक के लेप से ।
बस उसतरह हो जीव निर्मल ज्ञान जल के लेप से ।।९।।
हो ज्ञानगर्भित विषयसुख में रमें जो जन योग से ।
उस मंदबुद्धि कापुरुष के ज्ञान का कुछ दोष ना ।।१०।।
जब ज्ञान, दर्शन, चरण, तप सम्यक्त्व से संयुक्त हो ।
तब आतमा चारित्र से प्राप्ति करे निर्वाण की ।।११।।
शील रक्षण शुद्ध दर्शन चरण विषयों से विरत ।
जो आतमा वे नियम से प्राप्ति करें निर्वाण की ।।१२।।
सन्मार्गदर्शी ज्ञानि तो है सुज्ञ यद्यपि विषयरत ।
किन्तु जो उन्मार्गदर्शी ज्ञान उनका व्यर्थ है ।।१३।।
यद्यपि बहुशास्त्र जाने कुमत कुश्रुत प्रशंसक ।
रे शीलव्रत से रहित हैं वे आत्म-आराधक नहीं ।।१४।।
रूप योवन कान्ति अर लावण्य से सम्पन्न जो ।
पर शीलगुण से रहित हैं तो निरर्थक मानुष जनम ।।१५।।
व्याकरण छन्दरु न्याय जिनश्रुत आदि से सम्पन्नता ।
हो किन्तु इनमें जान लो तुम परम उत्तम शील गुण ।।१६।।
शील गुण मण्डित पुरुष की देव भी सेवा करें ।
ना कोई पूछे शील विरहित शास्त्रपाठी जनों को ।।१७।।
हों हीन कुल सुन्दर न हों सब प्राणियों से हीन हों ।
हों वृद्ध किन्तु सुशील हों नरभव उन्हीं का सफल है ।।१८।।
इन्द्रियों का दमन करुणा सत्य सम्यक् ज्ञान-तप ।
अचौर्य ब्रह्मोपासना सब शील के परिवार हैं ।।१९।।
शील दर्शन-ज्ञान शुद्धि शील विषयों का रिपू ।
शील निर्मल तप अहो यह शील सीढ़ी मोक्ष की ।।२०।।
हैं यद्यपि सब प्राणियों के प्राण घातक सभी विष ।
किन्तु इन सब विषों में है महादारुण विषयविष ।।२१।।

बस एक भव का नाश हो इस विषम विष के योग से ।
पर विषयविष से ग्रसितजन चिरकाल भववन में भ्रमें ।।२२।।
अरे विषयासक्त जन नर और तिर्यग् योनि में ।
दु:ख सहें यद्यपि देव हों पर दु:खी हों दुर्भाग्य से ।।२३।।
अरे कुछ जाता नहीं तुष उड़ाने से जिसतरह।
विषय सुख को उड़ाने से शीलगुण उड़ता नहीं ।।२४।।
गोल हों गोलार्द्ध हों सुविशाल हों इस देह के ।
सब अंग किन्तु सभी में यह शील उत्तम अंग है ।।२५।।
भव-भव भ्रमें अरहट घटीसम विषयलोलुप मूढजन ।
साथ में वे भी भ्रमें जो रहे उनके संग में ।।२६।।
इन्द्रिय विषय के संग पढ़ जो कर्म बाँधे स्वयं ही ।
सत्पुरुष उनको खपावे व्रत-शील-संयमभाव से ।।२७।।
ज्यों रत्नमंडित उदधि शोभे नीर से बस उसतरह ।
विनयादि हों पर आतमा निर्वाण पाता शील से ।।२८।।
श्वान गर्दभ गाय पशु अर नारियों को मोक्ष ना ।
पुरुषार्थ चौथा मोक्ष तो बस पुरुष को ही प्राप्त हो ।।२९।।
यदि विषयलोलुप ज्ञानियों को मोक्ष हो तो बताओ।
दशपूर्वधारी सात्यकीसुत नरकगति में क्यों गया ।।३०।।
यदि शील बिन भी ज्ञान निर्मल ज्ञानियों ने कहा तो।
दशपूर्वधारी रूद्र का भी भाव निर्मल क्यों न हो ।।३१।।
यदि विषयविरक्त हो तो वेदना जो नरकगत ।
वह भूलकर जिनपद लहे यह बात जिनवर ने कही ।।३२।।
अरे! जिसमें अतीन्द्रिय सुख ज्ञान का भण्डार है ।
वह मोक्ष केवल शील से हो प्राप्त – यह जिनवर कहें ।।३३।।
ये ज्ञान दर्शन वीर्य तप सम्यक्त्व पंचाचार मिल ।
जिम आग ईंधन जलावे तैसे जलावें कर्म को ।।३४।।

जो जितेन्द्रिय धीर विषय विरक्त तपसी शीलयुत ।
वे अष्ट कर्मों से रहित हो सिद्धगति को प्राप्त हों ।।३५।।
जिस श्रमण का यह जन्मतरु सर्वांग सुन्दर शीलयुत ।
उस महात्मन् श्रमण का यश जगत में है फैलता ।।३६।।
ज्ञानध्यानरु योगदर्शन शक्ति के अनुसार हैं ।
पर रत्नत्रय की प्राप्ति तो सम्यक्त्व से ही जानना ।।३७।।
जो शील से सम्पन्न विषय-विरक्त एवं धीर हैं ।
वे जिनवचन के सारग्राही सिद्ध सुख को प्राप्त हो ।।३८।।
सुख-दुख विवर्जित शुद्धमन अर कर्मरज से रहित जो।
वह क्षीणकर्मा गुणमयी प्रकटित हुई आराधना ।।३९।।
विषय से वैराग्य अर्हतभक्ति सम्यक्दर्श से ।
अर शील से संयुक्त ही हो ज्ञान की आराधना ।।४०।।
पूरण हुआ आनन्द से श्रावण सुदी एकादशी।
को पद्यमय अनुवाद यह सन् दो सहस दो ईसवी।।

-•-